LEVELS OF CHARACTER

चारित्रिक या नैतिक विकास के स्तर अथवा अवस्थायें (Levels or Stages of Character or Moral Development)

बालकों में चरित्र निर्माण या नैतिक विकास कैसे आगे बढ़ता है यह जानने के लिए मनोवैज्ञानिकों तथा अनुसंधानकर्ताओं द्वारा विविध प्रयत्न किये जाते रहे हैं। इनमें लॉरेन्स कोहलबर्ग (Lowrence Kohlberg) द्वारा किया गया प्रयास काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कोहलबर्ग ने अपने अनुसंधान कार्य द्वारा (Kohlberg, 1976) यह निष्कर्ष निकाला कि बालकों में नैतिकता या चरित्र के विकास की कुछ निश्चित एवं सार्वभौमिक स्तर अथवा अवस्थायें पाई जाती हैं। उसने इस प्रकार के जिन तीन स्तरों की चर्चा की वे हैं (i) पूर्व नैतिक स्तर (Pre-moral level) अथवा अवस्था जो 4 वर्ष से लेकर

10 वर्ष तक रहती है। (ii) परम्परागत नैतिक स्तर (Conventional Morality level) या अवस्था जो 10 तथा 13 वर्षों के दौरान रहती है तथा (iii) आत्म अंगीकृत नैतिक मूल्य स्तर (Self accepted moral principles level) या अवस्था जो 13 वर्ष से प्रारम्भ होकर प्रौढ़ावस्था तक चलती है।

कोहलबर्ग द्वारा प्रदत्त इस वर्गीकरण में जहाँ प्रथम स्तर बालकों के मौलिक विकास की उस अवस्था को बताता है जबकि बालकों में सही अर्थों में किसी प्रकार की नैतिकता, नैतिक मूल्यों या चरित्र गुणों की उपस्थिति नहीं पाई जाती। इस अवस्था में या तो वे डर कर या किसी लालचवश कोई बात करते हैं या मानते हुए देखे जा सकते हैं। दूसरे स्तर पर बालकों में जो नैतिक विकास देखने को मिलता है उसका रूप परम्परागत ही होता है। यानी यहाँ अब इस अवस्था का बालक वह करता है जो सामाजिक मान्यताओं तथा परम्पराओं के अनुकूल हो। तीसरी अवस्था में नैतिक विकास अपनी ऊँचाईयों को छूने लगता है क्योकि यहाँ बालक नैतिक मूल्यों के औचित्य को समझते हुए उन्हें स्वेच्छा से पूरी तरह अंगीकृत करके अपने व्यवहार और व्यक्तित्व गुणों में आत्मसात करते हुए देखा जा सकता है।

कोहलबर्ग द्वारा प्रदत्त इस प्रकार के वर्गीकरण को कुछ और आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जाय तो निम्न प्रकार के वर्गीकरण द्वारा बालकों के नैतिक या चारित्रिक विकास की पाँच प्रमुख स्तर या अवस्थायें तय की जा सकती हैं *(देखिये चित्र 10.1)।*

1. पूर्व नैतिक अवस्था (Amoral Stage)–यह अवस्था जन्म से लेकर दो वर्ष की आयु तक विद्यमान रहती है। इस अवस्था में बालक से किसी प्रकार की नैतिकता या चारित्रिक मूल्यों को धारण करने की बात ही नहीं उठती क्योंकि इस स्तर पर उसे यह समझ नहीं होती कि उसके ऐसा करने से किसी अन्य को नुकसान या परेशानी होगी। क्या अच्छा है क्या बुरा, यह बात उसकी समझ से बाहर ही होती है। उसे अपनी इच्छाओं, भावनाओं तथा संवेगों पर नियन्त्रण करना नहीं आता और परिणामस्वरूप वह अपनी मर्जी का मालिक बनकर इच्छित व्यवहार करने की जिद पकड़ता रहता है चाहे उसके लिये रोने, चिल्लाने, मारने–पीटने, तोड़ने फोड़ने जैसा कोई भी अनैतिक मार्ग क्यों न अपनाना पड़े।

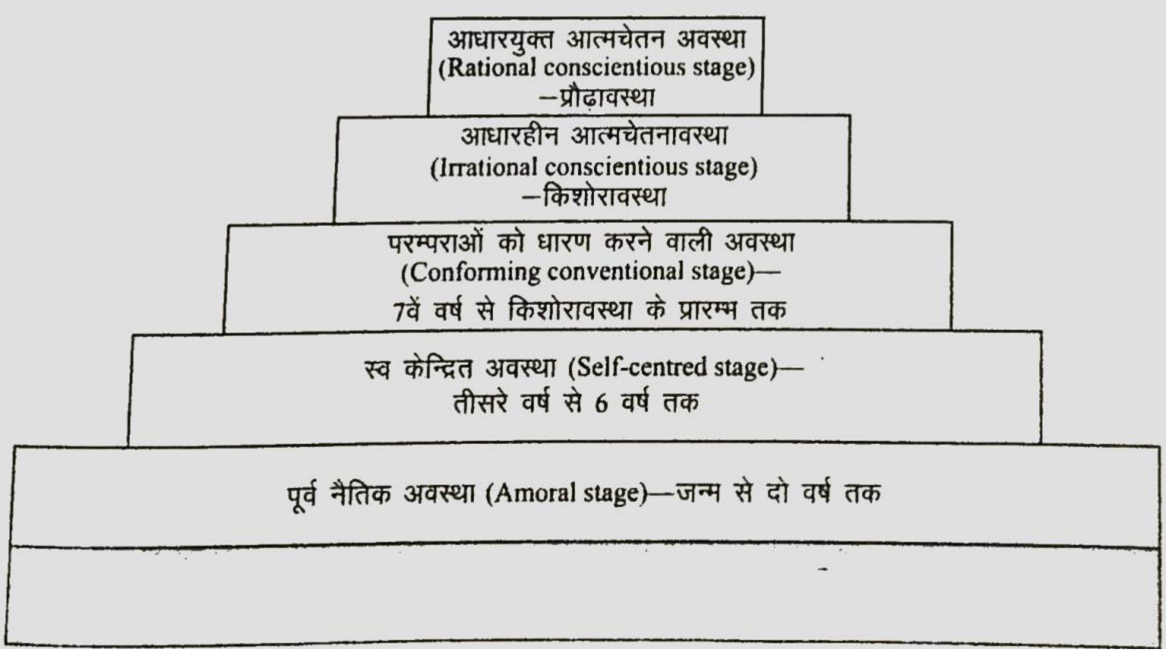

2. स्व केन्द्रित अवस्था (Self centred stage)–इस अवस्था का कार्यकाल तीसरे वर्ष से शुरु होकर 6 वर्ष तक होता है। इस अवस्था के बालक की सभी व्यावहारिक क्रियायें अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति के चारों ओर केन्द्रित रहती है। उसके लिये वही नैतिक होता है जो उसके स्व यानी आत्म-कल्याण से जुड़ा हुआ हो। फिर चाहे उससे किसी और का कैसा भी अहित या नुकसान होता रहे उसे उसकी कोई परवाह नहीं होती। बाल्यकाल के नैतिक विकास से जुड़ी हुई यह स्व-केन्द्रित अवस्था जब किसी व्यक्ति में अधिक गहरे ढंग से प्रवेश कर उसके व्यक्तित्व का अग बन जाती है तो ऐसा व्यक्ति वयस्क और प्रौढ होने पर भी अपनी महज स्वार्थ पूर्ति से आगे नहीं देख पाता और दूसरों के हित को नजरअदाज करते हुए विभिन्न प्रकार के असामाजिक और अमर्यादित आचरणो को करते हुये पाया जाता है।

3. परम्पराओं को धारण करने वाली अवस्था (Conforming conventional stage)–सातवें वर्ष से लेकर किशोरावस्था के प्रारम्भिक काल का सम्बन्ध इस अवस्था से है। इस अवस्था का बालक सामाजिकता के गुणों को धारण करता हुआ देखा जाता है अतः उसमें समाज के बनाये नियमों, परम्पराओं तथा मूल्यों को धारण करने सम्बन्धी नैतिकता का विकास होता हुआ देखा जा सकता है। इस अवस्था में उसे अच्छाई-बुराई का ज्ञान हो जाता है और वह यह समझने लगता है कि उसके किस प्रकार के आचरण या व्यवहार से दूसरों का अहित होगा या ठेस-पहुँचेगी। वह अपने माँ बाप, गुरुजन तथा अध्यापकों को नाराज नही करना चाहता और इसलिये उनकी कही हुई बातो तथा नियमों को अपनाकर अपने व्यवहार को मान्य परम्पराओ तथा नैतिकता के दायरे में ही रखना चाहता है। इसके अतिरिक्त कई बार वह नियमों तथा परम्पराओं के उल्लघन के फलस्वरूस्प उसे जो परिणाम भुगतने होंगे उनके डर से भी नियमों तथा परम्पराओं द्वारा मान्यता प्राप्त व्यवहार एवं आचरणो को अपनाने के लिए बाध्य रहता है। यही बात आगे चलकर उसे समाज तथा देश के कायदे कानूनों को भय वश पालन करते रहने की आदत विकसित करने का कारण बनती है।

4. आधारहीन आत्म चेतनावस्था (Irrational conscientious stage)–यह अवस्था किशोरावस्था से जुड़ी हुई है। इस अवस्था में बालकों को सामाजिक, शारीरिक तथा मानसिक विकास अपनी ऊँचाईयो को छूने लगता है और उसमें आत्म चेतना का प्रादुर्भाव हो जाता है। यह मेरा आचरण है, मैं ऐसे व्यवहार करता हूँ, इसकी उसे अनुभूति होने लगती है तथा अपने व्यवहार आचरण और व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणो की स्वयं ही आलोचना करने की प्रवृत्ति उसमें पनपने लगती है। पूर्णता की चाह उसमे स्वयं से असतुष्ट रहने का मार्ग प्रशस्त कर देती है। यही असतुष्टि उसे समाज तथा परिवेश में जो कुछ गलत हो रहा है (जैसा वह समझता है) उसे बदल डालने या परम्पराओं के प्रति विद्रोही रुख अपनाने को उकसाती है। इस तरह यहाँ उसका व्यवहार फ्रायड की शब्दावली में उसके सुपर ईगो (Super ego) से संचालित होता हुआ देखा जा सकता है। पूर्णता तथा नैतिकता को अपना आदर्श मानने की बात उसे समाज की वास्तविकता तथा व्यावहारिकता से काफी दूर ले जाती है और परिणामस्वरूप इस अवस्था में उसके व्यवहार पर तर्क और प्रयोजन के स्थान पर भावनाओ का अधिक प्रभाव रहता है। उदाहरण के लिये जो बात वह सही समझता है वह उसी पर आरूढ़ रहना चाहता है चाहे उसके लिये उसे फांसी पर ही क्यों न चढा दिया जाये। इस प्रकार का आचरण और व्यवहार नैतिक मूल्यो को धारण करने का बहुत ही अच्छा आधार और तार्किक मान्यता प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि सत्य पर आरूढ़ रह कर समाज और देश के लिये कुर्बानी देने वाले नवयुवकों को तैयार करने का कार्य इस प्रकार के नैतिक विकास स्तर द्वारा अच्छी तरह से किया जा सकता है। परन्तु परेशानी तभी होती है जबकि किशोरों का व्यवहार आधारहीन विचारधारा पर आधारित होकर मात्र उनकी भावनाओं का खिलौना बन कर या तो उनके लिये ही आत्मघाती साबित होता है अथवा उससे समाज के हित चिन्तन की बजाय बुराइयों को ही जन्म मिलता है। अतः जब तक व्यवहार को पर्याप्त कारण और आधार न मिल जाये तब तक उसे नैतिकता या चारित्रिक विकास का पर्याय नहीं माना जाना चाहिए।

5. आधारयुक्त आत्मचेतना अवस्था (Rational conscious stage)–नैतिक या चारित्रिक विकास की यह चरम अवस्था है। भलीभाँति परिपक्वता ग्रहण करने के बाद ही इस प्रकार का विकास संभव है। अब यहाँ जिस प्रकार के

नैतिक आचरण और चारित्रिक मूल्यों की बात व्यक्ति विशेष में की जाती है उसके पीछे केवल उसकी भावनाओं का प्रवाह मात्र ही नहीं होता बल्कि वह अपनी मानसिक शक्तियों का उचित प्रयोग करता हुआ अच्छी तरह सोच समझकर किसी व्यवहार या आचरण विशेष को अपने व्यक्तित्त्व गुणों में धारण करता हुआ पाया जाता है। उदाहरण के लिये वह भावनाओं में बह कर अहिंसावादी होने या युद्ध विरोधी होने सम्बन्धी मूल्य को आत्मसात नहीं करता। उसका इस सम्बन्ध में जो भी नैतिक आचरण होता है वह परिस्थिति विशेष की आवश्यकताओं को देखते हुये किसी ठोस तार्किक आधारभूमि पर आधारित होता है। अगर उसके देश पर विदेशी आक्रमण हो रहा हो या आतंकवादी गतिविधियां हो रही हों तो युद्ध करने और शस्त्र उठाने की बात को वह नैतिक मूल्यों के दायरे में ही रखना चाहेगा, परन्तु आक्रमण कर दूसरे देश की भूमि को हथियाने की बात अब भी उसके लिये अनैतिक ही बनी रहेगी। इस तरह नैतिक विकास की इस चरम अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति का नैतिक आचरण पूरी तरह उसकी संज्ञानात्मक शक्तियों (Cognitive power), तथा सम्बन्धों की सीमाओं को समझता हुआ पूरी तरह तर्कसम्मत एवं विचारयुक्त बन जाता है। इस प्रकार का चारित्रिक और नैतिक विकास ही व्यक्ति विशेष के लिये आदर्श माना जा सकता है।